



॥ ॐ नम सिद्धेभ्य ॥

## अकाल-मरण

सैद्धान्तिक चर्चा : प्रश्नोत्तर

प्रश्न नं० १-अपमृत्यु अर्थात् अकालमरण नहीं है क्योंकि प्रागम में इसका स्पष्ट नही पाया जाता। क्या यह ठीक ही है ?

उत्तर-मसारी जीव दो प्रकार के हैं। १ मोपक्रमायुष्क जीव, २ निरुपक्रमायुष्क जीव [ घण्ट पुरतक १० पृ० २३३-३४ ]। पिन जीवों का अकालमरण ( अपमृत्यु ) समभव है ये सोपक्रमायुष्क जीव हैं और पिन जीवों का अकाल-मरण समभव नहीं है ये निरुपक्रमायुष्क जीव हैं।

श्री तत्त्वार्थसूत्र अध्याय २ सूत्र १३ में निरुपक्रमायुष्क जीवों का उल्लेख है। वह सूत्र इस प्रकार है —

औपपादिकचरमोत्तमदेहासग्येयवर्षायुगोऽनपवत्यायुष ॥

अर्थ-उपपाद जन्मवाले, चरमोत्तम देहाले और अगस्त्यायुष की आयु वाले जीव अनपवत्य आयु वाले (निरुपक्रमायुष्क) होते हैं।

इस सूत्र का टाका में श्री १०८ गियानदि महाग्र गार्किर गार्य लिखते हैं कि इस सूत्र का सामर्थ्य से यह सिद्ध है

जाता है कि औषपादिक आदि से जा अन्य मसारा जीव हैं वे अपवत्य आयु घाल ( सोपन्नमायुषः ) होते हैं । १

श्री १०८ पूज्यपाद आचार्य कहते हैं कि इन औषपादिक आदि जीवों का आयु घाल निमित्त से नहीं घटती, यह नियम है, तथा इनसे अनिरिक्त जेप जाया का एसा कोई नियम नहीं है अथात् घाल कारण मिलने पर आयु घट जायगी । यदि कारण नहीं मिले तो आयु नहीं घटगी । २

श्री १०८ भास्करनन्दि आचार्य भा कहते हैं कि इम सूत्र ५३ को सामर्थ्य से यह भी सिद्ध हो जाता है कि औषपादिक से जो अन्य ससारी जीव हैं उनकी अकालमृत्यु भी होती है । ३

श्री १०८ धीरसेन आचार्य ने तथा श्री १०८ पूज्यपाद आदि आचार्या ने जो कुछ भा आपप्रथा में कथन किया है वह सबह की पाणी के अनुसार कथन किया है, जो कि उनको गुरुपरम्परा से प्राप्त हुआ था । वे योतरागा निप्रथ महान आचार्य हुए हैं । अन्य पुरुषों के समान उन्होंने अपनी तरफ से कुछ नहीं लिया है । अतः उपर्युक्त कथन प्रामाणिक है ।

प्रश्न न० २-अपमृत्यु सकारण है या निष्कारण ? क्या पर भव का आयुषध ही इस प्रकार का होता है ?

उत्तर-अमुक जीव का अपमृत्यु अवश्य होगी इस प्रकार का कोई आयुषध नहीं होता । औषपादिक आदि जीवों के

१- 'सामर्थ्यतस्ततान्येषामपवत्य [ एतोलकवार्तिक पृ० १४१ ]

२- 'न ह्येषामौषपादिकान्तीनां बाह्यनिमित्तयानामुपवत्यते इत्यर्थे नियम इतरेषामनियम ।' [ सर्वावधिनिधि सूत्र ५६ ]

तेष्वन्य तु ससारिण सामर्थ्यादपवत्योपपादवि भवतीति गम्यत ।

अतिरिक्त जो जीव हैं उनके भी अपमृत्यु का नियम नहीं है, क्योंकि उन सबकी अपमृत्यु नहीं होती। श्री घबल पु० ६ पृ० ७ पर कहा है कि सख्यात वष आयु वाले (कमभूमियाँ) मनुष्य, तिर्यचों की आयु का कदलीघात भी होता है और अधःस्थिति गलन भी होता है। यहाँ पर अधःस्थिति गलन का अर्थ है कि कदलीघात के बिना आयु का प्रति समय एक एक समय की स्थिति का कम होना। इतनी विशेषता है कि परमत्र सबधी आयुग्रह के पश्चात् मुख्यमान आयु का कदलीघात नहीं होता। [ घबल पु० पृ० २१० ]

श्री सवार्थसिद्धि के 'इतरेषामनियम' इस वाक्य से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि औपपादिक आदि से भिन्न अन्य जीवों का कालमरण या अकालमरण का नियम नहीं है, अर्थात् इतर जीवों का अकालमरण ही होगा ऐसा नियम नहीं है।

श्री १०८ भास्करनन्दि आचार्य के 'तेभ्योऽन्ये तु ससारिणः सामध्यादपवर्त्यायुषोऽपि भवन्तीति गम्यते' इस वाक्य में 'अन्ये' शब्द से यह भी ज्ञात होता है कि औपपादिक आदि से भिन्न अन्य ससारी जीवों के अपमृत्यु भी होती है और अपमृत्यु नहीं भी होती है।

अमुरु जीव की अपमृत्यु अवश्य होगी इस प्रकार का कोई-आयुग्रह नहीं होता। जिन जीवों को करणानुगोच का ज्ञान नहीं है वे ही ऐसा कहते हैं कि 'जिस जीव की सोपक्रम आयु है उसका मृत्यु के लिये ऐसा नियम है कि उसकी आयु नियम से उद्धारणारूप होगी और उन्मूलनरूप से नहीं होगी।' उन अज्ञानियों को यह भी खबर नहीं कि जिस आयुकर्म का उद्घटन नहीं है उस आयु

कर्म की उद्दीरणा भी नहीं होती। वे व्यापि य पूजा की चाह में यद्वा तद्वा आर्पयिगद्वा उपदेश देकर परम का भी ससार में रुलाते हैं और अपने अनुयायी जीवों का भाससार में रुलाते हैं।

नारकी, देव, भोगभूमियाँ के मनुष्य य तिर्यक्ष और तदुभय मोक्ष-ज्ञान चाले मनुष्या का आयु, का कदलीघात नहीं होता है। शेष-जीवा की आयु के लिये नियम नहीं। यदि शेष जीवों की आयु के कदलीघात का नियम मान लिया जाये तो आयु कर्म के उत्कृष्ट अवाधाकाल पूज फोटि के त्रिभाग के अभाव का प्रसंग आ जायगा। किन्तु आप मयो में उत्कृष्ट अवाधाकाल पूज फोटि का त्रिभाग कहा है, अतः कदलीघात का नियम नहीं है।

अकाल मरण के कारण—

कदलीघात मरण अथात् अकाल मरण किन कारणों से होता है, इन कारणों को श्री १०८ भगवत् कुन्दकुन्द आचार्य निम्न दो गाथाओं में कहते हैं—

यिसवेयणरत्तमस्यभयसत्यग्गहणसक्विलेसाण ।

आहारुत्सासाण णिरोहणा पिल्लए आऊ ॥ २५ ॥

हिमजलणसलिलगुरुरयरपव्ययतरुहणपडणभगेहिं ।

रसविज्जायघारण अणयपसगेहि विविहेहिं ॥ २६ ॥

[ भाष्य पाठक ]

\*—उदयगुणोपगम य सामिता णे ण विज्जह वितेसो । मात्तुण तिग्णि ठाण पमत्तवोई मवोई य ॥ ४४ ॥ [ प स० १/४४ भाव पीठ ]

‡—पुत्रकाठित्तमाणा अवाधा ॥ [ पट्टसुण्हागम १, प १ सूत्र २३ अथवा पु० १, पृ० १६० ]

अर्ध-विपभक्षणतें, वेदना की पीड़ा-के निमित्ततें, रुद्ध-रुद्ध  
 रुधिर वाका क्षयतें, भय तें, शस्त्रघाततें, मक्खन-घाततें,  
 आहार का तथा श्वास का विरोधतें, इन कारणतें मृत्यु का  
 क्षय होय है ॥ २५ ॥

हिम कहिये शीत पालानें, अग्नित पचनेतें, इन्धन-रहित  
 घड़े पर्यंत पर चढ़कर गिरने त, घड़े घृत्त पर चढ़ने-  
 शरीर का भंग होने से, रस कहिये पात-रहित  
 वाता सयोग करि धारण करे भरे ऐमे अन्य अनेक  
 कारणों तें आयु का व्युच्छेद होय है ॥ २६ ॥

यदि मोषत्रमायुष्क अथात् सख्यात वांशु-  
 तिर्यच को उपयुक्त कारण म से एक दृष्टि-  
 जायेंगे तो अनाल मरण हा जायगा और यदि  
 में से कोई भी कारण नहीं मिलेगा मरण  
 घटलाघात मरण नहीं होगा ।-कारण का  
 यतिरेक अवश्य पाया जाता है ।

“तत्कारणत्वस्य तदन्वयव्यतिरेकत्वस्य  
 कारणस्य घटादे कुलालावयव्यतिरेकत्वस्य  
 घापक्रमाभावात् तस्य तदुपापकवयवत्वस्य  
 वेदान्तपलम्भस्तत्र न तन्निमित्तत्वस्य

व्यवस्था है। जिसका जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक का है वह उस जन्य नहीं होता है, ऐसा देखा जाता है।

“यस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवति तत्तस्य मिति न्यायात्।” [ षष्ठ १२ पृ० २८६ ]

अर्थ—जो जिसके होने पर ही होता है और जिसके न होने पर नहीं होता वह उसका कारण होता है, ऐसा न्याय है।

सर्वज्ञ वाणी के अनुसार श्री १०८ विद्यानन्दि स्वामी भी कहते हैं कि शस्त्र-परिहार आदि बहिरंग कारणों का अपमृत्यु के साथ अन्वय-व्यतिरेक है। [ पृ० ३२३ ]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जय भी जिस जीव की अकाल मृत्यु होगी वह श्री कुन्दकुन्द भगवान द्वारा कहे गये विषभक्षण आदि कारणों के द्वारा ही होगी, विषभक्षण आदि के अभाव में या अभाव कर देने पर अकालमृत्यु नहीं होगी।

प्रश्न—जो रोगते दुःख होय, तां दुःख का दूर करने का अर्थ वैद्यक शास्त्र का प्रयोग है, अकालमृत्यु के अर्थ नहीं ?

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है, जाते वैद्यक-शास्त्र का प्रयोग दोऊ प्रकार करि देखिए हैं। ताते दुःख होय ताका भी प्रतीकार है, बहुति अकालमरण का भी प्रतीकार है।

टीका—अर्थ इस प्रकार है—

प्रश्न—दुःख के दूर करने अर्थ वैद्यक का प्रयोग है ?

समाधान—ऐसा नाहीं, जाते दोय प्रकार करि प्रयोग देखिए है। तहाँ वेदनाजनित दुःख होय ताके दूर करने अर्थ भी

विक्रिस्ता दग्गिण है और वेना ने अउदय म भी अकालमृत्यु क दूर करन अथ विक्रिस्ता दग्गिण है। तातें अपमृत्यु सिद्ध होय है।

श्री भाम्करनदि आचार्य भी मुख्याय टीका में कहते हैं—  
“विषशस्त्रवेदनादिव श्वविगेषनिमित्तविगेषेणापयत्यते ह्रस्वीत्रियते इत्यपयत्यं ।” अथात् विष शस्त्र वेदनादि वाद्य विगेष निमित्तों से आयु का ह्रस्व (कम) करना अपयत्यं आयु है। वाद्य निमित्ता से मुख्यमान आयु की स्थिति कम हो जाती है, यह इसका अभिप्राय है।

श्री १०८ विद्यानदि आचार्य भी कहते हैं—“न श्वाप्तकालस्य मरणाभाव एवमप्रहारादिभिमरणस्य दर्शनात्।” अथात्-अप्राप्त काल अथात् निसका मरणकाल नहीं आया ऐसे जात्र के भी मरण का अभाव नहीं है क्यार्कि एवमप्रहार आदि से मरण देखा जाता है।

मर्मज्ञ के उपदेश अनुसार लिखे गये इन आर्षवाक्यों का यह अभिप्राय है कि जिन कमभूमिया मनुष्य तिर्यचों का मरण काल नहीं आया है वे जोत्र भी एवमप्रहार आदि के द्वारा मरण को प्राप्त होते हुये दूरे जात हैं, क्यार्कि वाद्य निमित्तों से उनकी आयु-स्थिति कम हो जाता है।

इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि दूमरे जीवों के द्वारा भी आयु-स्थिति कम होकर मरण हो जाता है। अत समयमार गाया न० २३८ २५० क कथा का एकात्र नियम नहीं है। यदि सत्रया ऐसा मान लिया जाय कि एक दूमरे की आयु को नहीं हर सकता ता उपयुक्त सर्वज्ञागा से विरोध आता



है, तथा हिंसा का अभाव हो जाता है और हिंसा के अभाव से यद्य मोक्ष के अभाव का प्रसंग आ जाता है। यद्य मोक्ष के अभाव में धर्मोपदेश निरर्थक हो जाता है। [समयमार गाथा ४६ टीका] किंतु यद्य मोक्ष का अभाव है नहीं, अतः एक जीव के द्वारा दूसरे जीव का घात होता है यह आगम, युधि तथा प्रत्यक्ष से सिद्ध है। अतः अकाल मृत्यु नहीं है, ऐसा प्रकृत नहीं है।

यदि सर्वथा अकाल मरण न माना जावे तो सिद्ध सर्प आदि शस्त्र प्रहार आदि से रक्षा का उपाय क्या करता? किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव भी इनसे बचने का उपाय करते हुए दूरे जाते हैं। सर्प के पाट लेने पर उसके विष को दूर करने का उपाय किया जाता है तथा विष भक्षण पर लने पर चमन आदि करा कर मरण से बचाया जाता है। शस्त्रप्रहार से बचन के लिए श्री अकाल और निकटक दोना माइ विद्यालय से भाग निकले थे, इसपर भी श्री निकटक का मरण शस्त्रप्रहार द्वारा हुआ और श्री अकटक छिपकर बच गये।

यदि सर्वथा अकालमरण न माना जावे तो जीवद्वय का उपदेश निरर्थक हो जायगा। श्री १०८ भुतसागरसूरि ने तत्वाद्यवृत्ति में कहा है - 'अन्यथा दयाधर्मापदेशचिकित्साशास्त्र च व्यथ स्यात्।' अर्थ-अकाल मरण को न मानने से दयाधर्म का उपदेश और चिकित्साशास्त्र व्यथ हो जायगे।

इसका अभिप्राय यह है कि यदि अकाल मरण न माना जावे तो चिकित्सा शास्त्र में अकाल मरण के प्रतीकार का जो प्रयोग लिया है वह व्यर्थ हो जायगा क्योंकि जब अकाल मरण नहीं तो प्रतीकार किसका किया जावे? दयाधर्म का उपदेश

भी व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि जय दूसर के द्वारा कोई जीव मारा या बचाया नहीं जा सकता तो दया कैसे की जा सकती है? किन्तु श्री कृष्ण भगवान न दया का उपदेश स्वयं दिया है जो निम्न प्रकार है —

छापीव छटायदण णिच्च मावयणकायनोपहिं ।

कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्य महामत्ता ॥२३॥

( भावपाहुड़ )

अर्थ—हे मुनिवर! तू मन बधन काय के योगनिपरि छह काय के जीवनि का दया कर, बहुरि छह अनायतन पू परिहर-छोड़ि ।

धम्मो दयाधिसुद्धो पत्रज्जाः सव्वसगपरिचत्ता ।

देवो ववगहमोहो उदयकरो भव्वनीवारणं ॥२४॥ (शोषपाहुड़)

अर्थात्—धर्म वह ही है जो दया करि विमुद्ध है। प्रग्रज्या (दीक्षा) वही है जो परिग्रह रहित है, देव वही है जिसके मोह नष्ट हो गया है। ये तीनों भव्य जीवा के कल्याण करने वाले हैं।

जावदया दम सच्च-अचोरिय धमचरसतोसे ।

-सम्मददसणणाण तओ य सीलस्स परिवारो ॥२८॥

(शोषपाहुड़)

अर्थ—जीवदया, इन्द्रियों का दमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन ज्ञान तप ये सर्व शील(स्वभाव)के परिवार हैं।

इन उपर्युक्त गाथाओं से तथा भावपाहुड़ की गाथा २५-२६ से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री कृष्ण भगवान को स्वयं दूसरों द्वारा आयु का हरा जाना तथा दूसरों के द्वारा मरण से रक्षा किया जाना श्रेष्ठ था। अतः समस्तार २५७-२९१ के अभिषास

को प्रकरण अनुसार समझ कर एकान्त पक्ष का आप्रह नहीं करना चाहिये। समयसार, भाव पाहुड, योधपाहुड शील पाहुड आदि में जो श्री कुदकुद भगवान के वाक्य हैं वे सर्व ही माननीय हैं। जो मात्र समयसार का कुछ गाथाओं को मानते हैं और श्री कुदकुद के भी अन्य वाक्यों को नहीं मानते वे सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते।

प्रश्न न० ४—क्या अकाल मरण टल भी सकता है ?

उत्तर—अकाल मरण के कारणों से घचना अथवा अकाल मरण के कारणों के मिल जाने पर उनके प्रतिकार के द्वारा अकाल मरण टल जाता है। जैसे सर्प आदि से दूर हट जाना जिससे वह काट ही न सके, अथवा सर्प आदि के काट लने पर विष के प्रतिकार द्वारा अकालमरण टल भी जाता है।

श्री सखल देव के सप्तदश अनुमार श्री १०८ विधान द मंडानाचार्य ने श्लोकवार्तिक में इस प्रकार कहा है—

‘तद्वावे पुनरायुर्दप्रामाण्यचिकित्स्तादिनां क्व सामर्थ्यापयोग  
दु खप्रतीकारादाविति चेत्, तथैवापमृत्युप्रतीकारादौ तदुपयोगोऽस्तु  
तस्योभयथा दर्शनार्त् । न चायु क्षयनिमित्तोपमृत्यु कथ केनचित्प्र-  
तिक्रियता ? सत्यप्यसद्वद्योदयंतरङ्गे हेतो दु ख बहिरगे वातादि-  
विकारे तत्प्रतिपञ्चोपधोपयोगोपनीते दु खस्यानुत्पत्ते प्रतीकार स्यादिति  
चेत्, तर्हि सत्यपि कस्यचिदायुरुदयतरगे हेतो बहिरगे पथ्याहारादौ  
विच्छिन्ने जीवनस्याभावे प्रसक्ते तत्सपादनाय जीवनाधानमेवाप-  
मृत्योरस्तु प्रतीकार ।

अथ—अकालमृत्यु के अभाव में आयुवद की प्रमाण-  
भूत चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा (आपदेशन) आदिक की

सामर्थ्य का प्रयोग जिस पर किया जावगा आदि का प्रयोग अकालमृत्यु के प्रतिकार के लिये किया जाता है।

शका—चिकित्सा आदि का प्रयोग दुःख के लिये किया जाता है। अतः चिकित्सा की अभाव का प्रसंग नहीं आता।

समाधान—जिस प्रकार चिकित्सा अकालमृत्यु की निवृत्ति होती है उसी प्रकार चिकित्सा के प्रयोग से अकालमृत्यु का निवृत्ति भी दुःख-अपमृत्यु के प्रतिकार के लिये किया जाता है।

शका—आयुक्षय के निमित्त से अकाल मरण का निराकरण नहीं किया जा सकता।

प्रतिशका—असाता वेदनाय अकालमृत्यु होता है। ऐसे दुःख का भी निराकरण किया जा सकता है ?

प्रतिशका का समाधान—अकालमृत्यु का कारण होते हुए भी वातादि का निराकरण करने पर दुःख होता है। उस दुःख का प्रयोग करने पर दुःख ही उसका इलाज है।

शका का समाधान—यदि आयु का उन्मूलन आहार आदि के विच्छेद का ही इलाज है।

जीवन के अभाव का प्रसंग आ जाता है। ऐसा प्रसंग आने पर जीवन की रक्षा करने के लिए जीवन के आधारभूत आहार-आदिक अकालमृत्यु के प्रतीकार हैं।

इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—(१) बहिरंग कारणों से अकाल मरण होता है। (२) बहिरंग कारणों के प्रतीकार से अकाल मरण टल जाता है।

### अकाल मरण का अनियत काल—

प्रश्न न० ५—अकाल मरण का काल व्यवस्थित है, क्यों जिस समय जिसका मरण सर्वज्ञ ने देखा है उस ही समय उसका मरण होगा जैसाकि स्वामी कार्तिकेय ने गाथा ३२१-३३ में कहा है। अतः बाह्य कारणों से न तो अकाल मरण हो सकता है और बाह्य-कारणों के प्रतीकार से अकाल मरण टल भी न सकता। व्यवहार से जिसको अकाल मरण कहा जाता है निश्चयनय से वह भी काल मरण ही है, क्योंकि प्रत्येक जीव का मरण व्यवस्थित है।

उत्तर—जिन जीवों का मरण, शस्त्र-प्रहार आदि-वा कारणों के बिना होता है उनका मरण-काल व्यवस्थित है किंतु शस्त्रप्रहार आदि बाह्य कारणों से जिनका मरण होता उनका अपमृत्यु काल उत्पन्न होता है। सर्वज्ञदेव ने भी 'काल न' और 'अकाल नय' इस प्रकार परस्पर विरोधी दो नय कही है यदि सर्वज्ञदेव इन दोनों में से एक ही नय को कहते तो एक मिथ्यात्व का दूषण आ जाता। काल नय, अकाल नय का स्वरूप सर्वज्ञदेव ने इस प्रकार कहा है—

'कालनयेन निदाघदिवसानुसारि पच्यमानेसहकारफलवत्स-  
मयायत्तसिद्धि', अकालनयेन कृत्रिमोष्णपच्यमानसहकारफलवत्स-  
मयानायत्तसिद्धि ।' [ प्रवचन सार ]

अथ—काल नय से कार्य की सिद्धि (काय का होना) समय के आधीन होती है। जैसे आम्रफल गर्मी के दिनों में पकता है। अथात् काल नय से काय अपन व्यवस्थित समय पर होता है। अथवा काल के अनुसार होता है।

अकाल नय से कार्य की सिद्धि समय के आधीन नहीं होती है। जैसे आम्रफल कृत्रिम गर्मी से पका लिया जाता है। अथात् अकाल नय से काय हान का काल व्यवस्थित नहीं है। जैसा आम्रफल के पकने का काल कृत्रिम गर्मी के द्वारा उत्पन्न कर लिया जाता है। यदि ऐसा माना जावे कि सर्व ही कार्य काल के अनुसार होते हैं तो अकाल नय का उपदेश व्यर्थ हो जायगा। किंतु सर्वज्ञ के वाक्य व्यर्थ नहीं होते। अतः सर्व ही कार्य काल के अनुसार होते हैं ऐसा एकान्त नियम नहीं है।

काल और अकालनों की दृष्टि से भी सर्वज्ञदेव ने निम्न प्रकार उपदेश दिया है—न ह्यप्राप्तकालस्य मरणाभाव स्वप्नप्रहा-  
रादिभिमरणस्य दर्शनात् । प्राप्तकालम्यैव तस्य तथा दर्शनमिति-  
चेत् कं पुनरसौ काल प्राप्नोऽपमृत्युकालं वा ? प्रथमपक्षे  
सिद्धसाध्यता, द्वितीयपक्षे स्वप्नप्रहारादिनिरपक्षत्वप्रसंग । सकल  
बहिःकारणविरोपनिरपक्षस्य मृत्युकारणस्य मृत्युकालव्यवस्थिते ।  
ज्ञानसपातादिबहिरगकारणान्वयन्यतिरेकानुविधायिनस्तस्यापमृत्यु-  
कालत्वोपपत्ते । ( श्लोकातिशय )

अर्थ—जिनके मरणकाल प्राप्त नहीं हुआ उनके मरणकाल का अभाव है अथात् उनके मरण नहीं होता, ऐसा कहना ठीक

नहीं है, क्योंकि रज्जुप्रहार आदि के द्वारा, मरणकाल प्राप्त न होने पर भी, मरण प्रत्यक्ष देखा जाता है।

शका—जिसका मरणकाल आ गया है वमही का मरण देखा जाता है।

प्रतिगका—मरणकाल से क्या प्रयोजन है ? जिसकी आयु पूर्ण हो गई अर्थात् जिसके आयु कर्म का स्थिति पूर्ण हो गई उसके मरणकाल से प्रयोजन है या अपमृत्युका ? अर्थात् जिसके आयुक्रम की स्थिति, पूर्ण नहीं हुई है उसके मरणकाल से प्रयोजन है ?

शका का समाधान—प्रथम पक्ष में सिद्धसाध्यता दोष आता है, क्योंकि आयु पूर्ण होने पर काल मरण होता है, यह वा. इष्ट है, इसके सिद्ध करने को आवश्यकता नहीं है। द्वितीय पक्ष में रज्जुप्रहार आदि की निरपेक्षता का प्रसंग आ जायगा। जिसका मृत्युकारण सम्पूर्ण विशेष बाह्य कारणों से निरपेक्ष है उसका मृत्युकाल व्यवस्थित (निश्चित) है। शस्त्रप्रहार आदि का अपमृत्यु के साथ अन्वय व्यतिरेक का विधान होने से अपमृत्युकाल उत्पन्न होता है।

यहाँ पर 'व्यवस्थिते' और 'उपपत्ते' ये दोनों शब्द ध्यान देने योग्य हैं। कालमरण में मरण काल व्यवस्थित (निश्चित) है किन्तु अकाल मरण में बाह्य विशेष कारणों से मरण काल उत्पन्न होता है। अर्थात् अकाल मरण (अपमृत्यु) के अभाव का प्रसंग आ जायगा। यदि ऐसे अकाल मरण का अभाव माना जाये तो आयुर्वेद की प्रमाणभूत चिकित्सा तथा शल्य आदि (आपरेसन आदि) की सामाध्य का उपयोग कैसे होगा ? क्योंकि वसु चिकित्सा की सामाध्य का उपयोग तो अकालमरण क

प्रतिकार में होता है। 'तदभावे पुनरायुर्वदप्रामाण्यधिकित्तितादीनां च क्व सामार्थ्योपयोगः ।'

जब अकालमरण का प्रतिकार भी हो सकता है तो इससे भी सिद्ध है कि अकाल मरण का काल व्यवस्थित नहीं है।

कुछ पकान्तविमूढ़ अकालमरण के मानने पर यह आपत्ति उठाते हैं कि यदि अकालमरण माना जावेगा तो अकाल जन्म भी मानना होगा और अकाल जन्म के मानने पर करणानुयोग का यह व्यवस्था कि मरण से अधिक से अधिक तीन समय पश्चात् जीव जन्म लेता है गड़बड़ा जायगा। इस प्रकार की आपत्ति उठाने में ही कारण हो सकते हैं। या तो उठाने करणानुयोग के रहस्य का समझा ही नहीं या उनकी किसी प्रकार का छाप है। इसलिये वे मयज्ञ वाक्यों पर आपत्ति उठाते हैं।

अकाल मरण का उपरोक्त वर्णन स्वयं सर्वज्ञदेव ने किया है। जिनको सवज्ञ-वाक्यों पर श्रद्धा नहीं है वे सम्यग्दृष्टि भी नहीं हैं।

'विषशस्त्रवेदनादिबाह्यनिमित्तविशेषणापहत्यते हृत्स्थीक्रियत इत्यपवर्त्य अपवर्तनायमित्यथ । [मुलशेष उपाय वृत्ति पृ ४५]

अर्थात् विषमक्षण, शस्त्रप्रहार, वेदना आदि विशेष बाह्य कारणों से जिनका आयु का ह्रास (कम) हो सकता हो उनकी आयु अपवर्तनीय है।

भाव पाहुड़ में भी श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने कहा है कि विष मक्षण से, वेदना की पीड़ा से रक्त क्षय से, भय से, शस्त्र



घात से, संकष्टों पर परिणाम से, आहार तथा श्यास के निरोध से, इन कारणों से आयु का क्षय अर्थात् आयु कम होती है।

मुख्यमान आयु की स्थिति के ह्रास होने का अकाल मरण या अपमृत्यु कहते हैं। मुख्यमान आयु स्थिति के ह्रास हो जाने के पश्चात् और मरण से अन्तर्मुहूर्त (असक्षेपाद्वा) काल से पूर्व परभव आयु का घन्य होने पर ही मरण होता है। परभव। की आयु का घन्य हुए बिना किसी भी जीव का मरण नहीं होता। काल मरण वाले भा जिनके पूर्व में आयु का घन्य नहीं हुआ, वे भी मरण से अन्तर्मुहूर्त काल (असक्षेपाद्वा) पूर्व ही परभव आयु का घन्य करते हैं। आयु का जघन्य आवाधाकाल अन्तर्मुहूर्त काल अर्थात् असक्षेपाद्वा होता है (धवल पु० ६ बृ० १९३-१९४)। अतः अकाल जन्म का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि अकाल जन्म का प्रश्न तो तब उठ सकता है जब परभव की आयु घन्य के बिना, मरण हो जावे या आवाधाकाल से पूर्व मरण हो जावे, किन्तु, दोनों घातें संभव नहीं हैं [ धवल पु० १० ] आयु कम का जघन्य आवाधाकाल असक्षेपाद्वा है अर्थात् आवाधाकाल इतना जघन्य है कि जिसका संक्षेप अर्थात् ह्रास नहीं हो सकता है।

मरण और जीवन पर्यायाभित हैं (समयसार गाथा ५६ टीका) अतः निश्चय से न कालमरण है और न अकाल मरण है। पर्यायाभित व्यवहार नय से ही काल और अकाल दोनों मरण हैं। समयसार गाथा ६ में भी कहा है कि निश्चयनय से जीव न प्रमत्त है और न असमत्त है, क्योंकि ये दोनों अवस्था पर्यायाभित हैं, जो निश्चयनय का विषय नहीं है।

( कार्तियानुप्रक्षा गाथा ३२१-३२२ पर विचार )

ज जस्स जम्मि दसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।  
 णाद चिणेण गियत्त जम्म वा अह्व मरण वा ॥३२१॥  
 त तस्स तम्मि देमे तण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।  
 को सक्कइ वारेदु इत्थो वा तह जिणियो वा ॥३२२॥

अर्थ—जिस जीव के, जिस देश में, जिस काल में, निम्न विधान से, जो जन्म अथवा मरण जिनद्वय न नियत रूप से जाना है, उस जीव के, उसी देश में, उसी काल में, उमा विधान से होने वाले उस जीवन या मरण को इन्द्र या जिनेन्द्र कौन टाल सकता है ?

अब प्रश्न यह होता है कि क्या इन दो गाथाओं द्वारा श्री १०८ भवामा कार्तिकेय का 'अनियति निरपक्ष' एतान् नियति सिद्धान्त के उपदेश देने का अभिप्राय रहा है या अन्य कुछ अभिप्राय रहा है ?

जैन धर्म का मूल सिद्धान्त अनेकान्त है । इसलिए मरुहद्वय न नियति नय और अनियति नय इन दो परस्पर विरोधी नयों का उपदेश दिया है (प्रवचन सार) । श्री मरुहद्वय ने यह भी कहा है कि जो मात्र नियति नय को मानता है वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है अथवा गृहीत मिथ्यादृष्टि है । श्री १०८ भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि अनुसार श्री १०८ गौतम गणधर ने द्वादशग रूपी श्रुत की रचना की, जिसके दृष्टिवाद नामक यागहर्षे अक्षरं परमर्ता ( मिथ्या मा यतार्ता ) का कथन है, वसर्म नियति वाद परमत का भी कथन है । कहा भा है—

सुत्ताः अट्टोत्तीर्णि लखरपदहि ६६००००० अग्रधओ अखलेखओ  
अवत्ता अभोना निग्गुणा स०रगओ अणुमेत्ता णत्थि जावो जीवो  
येअ अत्थि पुदयियादागा ममुदग्ग चोयो" षप्पज्जइ णिच्छेयणो  
णाणेण' धिणा मचेयणा णिच्छा अणिच्छो अप्पेत्ति यण्णदि । तेरा  
सिय णियदिवाद् विण्णाणवाद् सहवाद् पणाणवाद् दब्बवाद्  
पुरिसवाद् अ यण्णेदि । [पवन पु १ पृ० ११० १११]

अर्थ—दृष्टिवाद अज्ञ वा सूत्र नामक अवाधिकार अठासं  
लार पत्तो के द्वाग जीव अवधक ही है, अवलेपक हा है, अकत  
ही है, अभोधा ही है, निगुण ही है, सर्वगत ही है, अणु प्रमाण  
हा है, जाय नास्तिस्वरूप हा है, जाय अस्ति स्वरूप ही है । पृथ्वं  
आदि पाच भूतों के समुदाय रूपसे जाय उत्पन्न होता है चेतन  
रहित है ज्ञान के बिना भी सचेतन है । नित्य ही है, अनित्य  
ही है, इत्यादि रूप से परमत्तों का कयन करता है, इसमें  
त्रैराशिरवाद, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद,  
द्रव्यवाद, और पुरुषवाद, परमत्तों का भी वर्णन है । अर्थात्  
दृष्टिवाद अज्ञ के सूत्र अधिकार में 'नियतिवाद' की परमत्तों के  
गणना का है ।

दृष्टिवाद अग में श्री १०८ गौतम गणधर ने जिस नियति  
वाद को एकान्त मिथ्यात्व अध्यात् गृहात् मिथ्यात्व कहा है उस  
नियतिवाद का स्वरूप निम्न प्रकार कहा गया है -

'यद्भवति तद्भवति, यथा भवति तथा भवति, यत्र भवति  
तेन भवति, यदा भवति तदा भवति, यस्य भवति तस्य भवति,  
इति नियतिवाद ।' [पचसप्र० पृ० १४७]

यदा यथा यत्र यतोऽस्ति येन यत्,  
तदा तथा तत्र ततोऽस्ति तेन तत् ।



मति अणताणता तीमु वि फाल्लमु मव्व दव्वाणि ।  
सन्न पि अणयत तत्ता भणिद् जिणिंदेहिं ॥२२४॥

ज वस्तु अणयत त विय कज्ज कदेदि नियमेण ।  
घट्टु-धम्म-जुद् अत्थ कज्ज-करं दीसदे लोए ॥२२५॥

सन्न पि अणयतं परोक्ख-रूवेण ज पयासेदि ।  
त मुयणाण भण्णदि ससय-पहुदीहि परिचत्त ॥२२६॥

णाण धम्मजुद् पि य एय धम्म णिमुक्खदे अत्थ ।  
तम्मयधिवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाण ॥२२६॥

जा तच्चमणेयत नियमा सहदि सत्तमगेहिं ।  
लायाण पण्ह-वसन्तो यवहार पयत्तण्ह च ॥२२१॥

जो ध्यायेण मण्णदि जीवाजीवादि णव-विह अत्थ ।  
सुदणाणेण णएहि य सो सहिद्धा हवे सुदो ॥२२२॥

अर्थ—सब द्रव्य तीर्ना ही काल में अनन्त हैं । अतः  
जिनेन्द्र ने सभी को अनेकान्तात्मक कहा है ॥२२४॥

जो वस्तु अनेकान्त रूप है वही नियम से कार्यकारी है  
क्योंकि लोक में बहुत धमयुक्त अर्थ ही कार्यकारी देखा जाता  
है ॥२२५॥

जा परोक्ष रूप से सत्य को अनेकान्त रूप दर्शाता है और  
सत्य आदि संरहित है उस ज्ञान को भ्रुतज्ञान कहते हैं ॥२२६॥

यद्यपि अर्थ नाना धर्मा से युक्त है तथापि नए एक धर्म  
को कहता है क्योंकि उस समय उसी धर्म की विवक्षा है, शेष  
विवक्षा नहीं है ॥२२६॥

लोगों के प्रश्ना के वश से तथा व्यवहार को चलाने के  
लिये सप्त भगी व द्वारा जो नियम से अनेकान्तात्मक ( जीव

जीव आश्रय यद्य सवर निर्जरा भाक्ष ) इन सात तत्वों का भ्रदान करता है तथा जीव अजाय आश्रय यद्य सवर निर्जरा मोक्ष ण्य और पाप इन नौ पदार्थों का भ्रुतज्ञान और नयों के द्वारा सादरपूर्वक मानता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है ॥३११-३१२॥

इन गाथाओं से स्पष्ट है कि भी १८ स्वामी कार्तियेय को अनेकान्त का सिद्धान्त इष्ट था। इसलिये 'होन यह कहा कि जो नयम से, जीव अजीव त्रय और आश्रय यद्य सवर निर्जरा भाक्ष त्रयाय, इन सात तत्वों का भ्रुतज्ञान और नयों के द्वारा अनेकान्त रूप से भ्रदान करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। यहाँ पर एकान्त नैयतिवाद के भ्रदान का सम्यग्दर्शन नहीं कहा है किन्तु भ्रुतज्ञान के अज्ञ रूप नियति नय अनियति नय काल नय अकाल नय प्रादि नयों के द्वारा अनेकान्त रूप से तत्य और अथ के भ्रदान को शुद्ध सम्यग्दर्शन कहा है। गाथा ३१२ में 'मुदणगण' अर्थात् भ्रुतज्ञान शब्द से यह भी स्पष्ट कर दिया है कि जो भी सर्वज्ञ ने द्रव्य भ्रुतरूप कहा है उसके ज्ञान से जो तत्वों का भ्रदान होगा वह शुद्ध सम्यग्दर्शन है अर्थात् जो सर्वज्ञ ने कहा है वह सत्य है, इस भ्रदान को सम्यग्दर्शन कहा है।

जो ण विजाणदि तच्च, सो जिणवयणे करेदि सहण ।  
जं जिणवरमणिय त, सव्वमह सम्ममिच्छामि ॥३२४॥

अर्थ—जो तत्वों का नहीं जानता किन्तु जिनेन्द्र भगवान के चरणों पर भ्रदा करता है और जो जिनेन्द्र भगवान से कहा है उसको मानता है वह सम्यग्दृष्टि है।

गाथा ३११-३१२ और ३२४ में यह क्यों नहीं कहा कि जो सर्वज्ञ ने देखा है उसको जो भ्रदा करता है वह सम्यग्दृष्टि है ?

श्री १०८ कन्दकन्द आचार्य ने भी समयसार प्रथम गाथा में यह प्रतिज्ञा की है कि जो केवली (सर्वज्ञ) और श्रुतप्रेषक (पूर्ण द्रव्यभूत के गाता) न जो कहा है वह ही मैं कहूँगा। यह प्रतिज्ञा क्यों नहीं की कि सर्वज्ञ ने जो कहा है वह मैं कहूँगा। समयसार की प्रथम गाथा इस प्रकार है—

यद्विदुः सर्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं गद्ग पद्म ।  
 वोच्छामि मस्यपाहुड, मिणमो मुग्रनेवला भणिय ॥१॥

जिन श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय न तत्वों की अनेकार्थरूप से धृद्धा तथा सर्वज्ञ वाक्यों की श्रद्धा का शुद्ध सम्यग्दर्शन कहा है क्या वे ही श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय गाथा नं० ३२१-३२३ द्वारा सर्वज्ञ-ज्ञान के आधार पर ज्ञान नियतिवाद को मानने वाला सम्यग्दृष्टि है ऐसा कहते ? अर्थात् एकांत की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन नहीं कह सकते थे। अग ही तीन गाथाओं के यथार्थ अभिप्राय को समझने के लिये यह देखना होगा कि ये तीन गाथा ३२१-३२३ किस प्रकरण में आई हैं।

गाथा ३२१-३२३ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की हैं। इस अर्थ में द्वादश अनुप्रेक्षा का कथन है। प्रथम अनुप्रेक्षा 'अनित्य' है जिसका कथन २० गाथाओं द्वारा किया गया है। वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये इस अनित्य अनुप्रेक्षा में धन-यौवन-स्त्री-पुत्र आदि मद्य पदार्थों को अनित्य दिखाया है। यदि कोई प्रकरण को न समझकर अनित्य के इस उपदेश द्वारा पदार्थों को सर्वदा क्षणिक मानकर एकांत क्षणिकवाणी मिथ्यादृष्टि में जावे तो इसमें स्वयं उसी का दोष है, क्योंकि हमने प्रकरण के अनुसार अनित्य की २० गाथाओं के यथार्थ अभिप्राय को नहीं समझा। यथा अनित्य-अनित्य आत्मक अनेकार्थ रूप है। अनित्य भावना

का उपदेश होने में श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय का यह कर्मा अभिप्राय नहीं हो सकता था कि पदाभ अतित्य ना है। पैराम्य वपन्न करान के लिये 'अतित्यता' की मुद्राणा से अतित्य अनुप्रेक्षा में कथन किया गया है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पदाभ सर्वथा अनित्य है। इसी प्रकार अन्य अनुप्रेक्षाओं (भाषनाओं) के सम्बन्ध में जान लेना चाहिये।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा के अन्दर इन चारह भाषनाओं में अन्तिम भाषना घमानुप्रेक्षा है। इसका प्रारम्भ में गाथा ३०० व ३०३ के द्वारा मयेत्त का कथन किया गया है, क्योंकि मयेत्त के द्वारा ही उर्मापदेश दिया गया है। गाथा ३०४ में सागार और अनगार के भेद से दो प्रकार का उक्तलाया गया, जिस सागार घम के चारह और अनगार के दस भेद कहे हैं। गाथा ३०५-३०६ में सागार के चारह भेदों का नाम उक्त किया गया है। इन चारह भेदों में प्रथम भेद गुद्ध सम्यग्दृष्टि है। जिसका कथन गाथा ३०७-३०७ में किया गया है।

गाथा ३०७ में सम्यग्दर्शन के स्वामित्व का कथन है। गाथा ३०८ व ३०९ में उक्तलाया है कि कर्म के उपशम स्वयं तथा क्षयोपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन, द्वायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। गाथा ३१० में यह कथन है कि यह जीव असंख्य बार सम्यग्दर्शन, दर्शनप्रसन्नता का भक्षण करके छोड़ देता है।

गाथा ३११-३१२ का पूर्व में उद्धृत की जा चुका है, में यह स्पष्ट कहा गया है कि श्रुतज्ञान तथा त्यों के द्वारा जो अनपान्तमयी जीव-अजीव द्वय, आद्य-वय-सवर-निर्जरा-माक्ष-रूप पचाय इन सात वस्त्रों का भक्षण करता है वह शुद्ध



सम्यग्दृष्टि है। इस की सामर्थ्य से यह भी विन्तित हो जाता है कि एकांत नियतिवात्त आत्ति की श्रद्धा करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

गाथा ३१३-३१६ इन ४ गाथाओं में सम्यग्दृष्टि के भावों का कथन है कि वह मद नहीं करता, मोहविलास को हेय मानता है, गुण ग्रहण करता है, विनय करता है, सार्धम अनुराग होता है, वह से जाव को भिन्न जानता है।

गाथा ३१७ में कहा है कि जो दोष रहित देव को मानता है, सब जीवों की त्या को उत्कृष्ट धर्म मानता है और निर्मय गुरु को मानता है वही निश्चय में सम्यग्दृष्टि है। गाथा ३१९ में बतलाया है जो त्राप सहित देव का, जायतिमा आत्ति को घम तथा वक्ष सहित का गुरु मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। अथान कुदेव, कुधम और कुगुरु का मानने वाला मिथ्यादृष्टि है।

यदि कोई यह मानकर कि कुदेव आदि लक्ष्मी, पुत्र आदि देवर जीव का उपकार करते हैं कुदेव आत्ति को मानन लगे ता महात मिथ्यात्व छुटाने के लिये श्री १०८ म्यामी कार्तिकेय कुदवात्ति की पूजा क निषेध के लिये गाथा ३१२ के द्वाग निम्न प्रकार उपदेश देते हैं—

णय कावि देदि लक्ष्मी, ण कोवि जीवरस कुणदि बजयार।

उवयार अवयार कम्मपि सुहासुह पुणत्ति ॥३१९॥

अर्थ—न तो कोई जीव को लक्ष्मी देता है और न कोई उसका उपकार करता है, किन्तु शुभ अशुभ कर्म जीव का उपकार और अपकार करता है।

इस गाथा ३१९ में जा यह सिद्धांत बतलाया है कि एक जाव दूसरे जीव का उपकार या अपकार नहीं कर सकता है, वह मात्र

बुद्धदेवादि की पूजा के निवेद्य के लिये है, किंतु इस सिद्धांत का सर्वथा नहीं मानना चाहिये। श्री म्यामां कार्तिकेय ने श्रय यह कथन किया है कि एक जात दूसरे जात का अपकार या उपकार करता है।

तिरिषद्दि खनमाण, दुष्ट-मणुस्सहि हम्ममाणा वि ।  
 सवत्थवि सतट्ठी, भय-दुक्ख विसहदे माम ॥११॥  
 अण्णोण्ण खम्भता निरिया पावत्ति दाम्ण दुक्ख ।  
 माया वि जत्थ भवखन्नि, अण्णो की तत्थ रक्खेत्ति ॥४२॥

अर्थ—एक तिर्यंच का अन्य तिर्यंच खा लेते हैं, दुष्ट मनुष्य उसे मार डालते हैं, अब सब जगह से भयभीत हुआ प्राणा भयानक दुःख का सन्ता है। तिर्यंच परम्पर में हा एक दूसरे को खा जाते हैं, अतः तारुण दुःख पाते हैं। जहाँ माता हा भक्षक हो वहाँ दूसरा कौन रक्षा कर सकता है ?

गाथा ३१७ में 'जीवाण उयावर घम्म' तथा गाथा ४७८ में 'जायाण रक्खण घम्मा।' इन श्लोकों द्वारा यह धतलाया गया है कि जीवा की रक्षा अथवा रक्षा करना उत्कृष्ट धर्म है। जावों की रक्षा करना ही तो उन जीवों का उपकार है।

श्री सर्वज्ञदेव ने भी उपदेश दिया है कि परम्पर में एक जीव दूसरे जीव का उपकार कर सकता है। उस सबस्य वाणा के अनुसार—परस्परोपग्रहा जीवानाम् ॥२१॥ (श्री साध अध्याय ५) इस सूत्र की रचना हुई है। अर्थात् परस्पर सहायक होना यह जावों का उपकार है। इस सूत्र को टाका में भी १०८ श्रुत सागर जी आचार्य ने निम्न प्रकार कहा है—

‘यथा चाप पुत्रस्य पोषणादिक करोति, पुत्रस्तु

कृतया देवाचनादिक कारयन् श्रीगण्डधर्मणादिक करोति । यद्यो  
 चार्यं इहलोक-परलोकमौग्य-गय-मुपदेश दशयति तदुपदेशतृप्तवि  
 यानुष्ठान कारयति, शिष्यस्तु गुण-तुल्यवृत्त्या तत्पात्रमर्दननमस्कारवि  
 धानगुणस्तत्रनाभीष्ट-स्तुमर्मणान्तिकमुपकार करति । यदि राजा  
 किङ्करेभ्यो धनादिक लभति भृत्यास्तु स्वामिने हित प्रतिपादयन्ति  
 अहितप्रतिषेध च कुर्वन्ति, स्वामिन च पृष्ठत कृत्वा स्वयमग्रे भूत्वा  
 स्वामिशत्रुभङ्गाय युद्ध्यते । यो जीवो यस्य जीवस्य सुख करोति  
 स जीवस्तु जीव बहुवागन् जीवयति, यो मारयति स त बहुवा  
 रान् मारयति ।”

इस सूत्र की टीका का यह अभिप्राय है कि पिता पुत्र का  
 और पुत्र पिता, का आचार्य शिष्य का और शिष्य आचार्य का,  
 स्वामी सेनक का और सेनक स्वामी का उपकार करते हैं । जो  
 जान दूसरे को सुखी करता है, दुखी करता है, जिवाता है या  
 मारता है, वह जीव भी उस जाध को बहुत बार सुखी करता है  
 दुखी करता है, जिवाता है या मारता है ।

श्री पद्मपुराणादि प्रथमानुयोग में इसके अनेकों दृष्टान्त हैं ।  
 यदि उनका उल्लेख किया जाय तो बहुत विस्तार हा जायगा ।  
 अतः प्रथमानुयोग के ग्रन्थों से देखने की कृपा करें । श्री सर्वज्ञ  
 देवने जाधों के उपकार करने की प्रेरणा का है ।

गगण वा क्षुधाण, तण्हाए वा समेण वा ऋद्ध ।

दिष्टा समण साहु, पडिवज्जनु आदसत्तीए ॥२५२॥

( प्रवचनसार )

अथ—रोग से, क्षुधा से, तथा से अथवा श्रम से आक्रान्त  
 ( पीड़ित ) श्रमण का दूरकर साधु अपनी शक्ति से अनुसार  
 वैयावृत्त्यादि करो ।

१३। १३ ।

1) > यद्यपि स्वामी कानिष्यानुप्रत्या गाथा ३१९ में यह कहा है—  
एक जीव दूसरे जीव का उपकार व अपकार कर सकता। और  
यहो ज्ञान था बुद्धिबुद्ध भगवान न प्रयत्नमार में और था उमा  
स्वामी आचार्य न माकशास्त्र म कहा है। इस प्रकार परस्पर  
विरोधों में ही उपदेश पावे जाते हैं। इन दोनों उपदेशों में से  
यदि कोई चाहे हिमा, एन का मर्यादा पत्र ग्रहण करके दूसरे को  
न माने तो यह महात्मात्त मिथ्यादृष्टि है और जो नयविषयता से  
दोनों उपदेशों को यथाव मानता है यह स्याद्वाद। सम्यग्दृष्टि है।

• यदि ऐसा प्रकार माना जाये कि एक जाय दूसरे जीव  
का उपकार या अपकार नहीं कर सकता तो जीवत्या रूपी धर्म  
सथा द्रव्य-हिमा ने अभाव का प्रसंग था जायेगा और इनके  
अभाव से वप और मोक्ष का अभाव हो जायगा। द्रव्यहिंसा  
न ज्ञानो हो ऐसा माननी है, क्योंकि ममयमार गाथा २८३-२८५  
में अप्रत्याप्यान और अप्रतिक्रमण द्रव्य और भाव से ( द्रव्य  
हिंसा और भाव हिंसा ) का प्रकार का कहा गया है।

प्रतिकारण अग का यणन करते हुए श्री स्वामी कानिष्येय  
धम म स्थापना, वे द्वारा दूसरे व उपकार का उपदेश देते हैं।

धम्माद्य गलमण जा अण्ण सठवणि धम्मग्गि ।

अप्याण वि मुण्डियदि, ठिण्णिकरण णदि तस्सेष ॥४२०॥

अथ—धम से खलायमान अथ जाय ना जा वम में स्थिर  
करता है तथा अपने का भा धर्म म नद करता है उसके ग्यति  
करण गुण टावा है।

यदि कोई भीष गाथा ३१६ व कथन के अनुसार यह विचार  
करे कि कोई चाहे दूसरे का उपकार नहीं कर सकता, दूसरे चाहे

का स्थितिकरण न कर तो क्या वह सम्यग्दृष्टि हो सकता है ? इस प्रकार सम्यग्दृष्टि की अनेकानेक दृष्टि होती है। यह किसी अपेक्षा से गाथा ३१०-३२ के कथन को भासत्य मानता है और किसी अपेक्षा से इनके प्रतिपक्षी कथन को भी मत्य मानता है।

व्यन्तर देवी देवता को वीतराग सर्वज्ञ देव मानकर नहीं पूजना चाहिये, अथवा वीतराग सर्वज्ञ देव की पूजा के समान व्यन्तर देवी देवता की पूजा नहीं करनी चाहिये। इस भाव को दृढ़ करने के लिये सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि मेरी भवितव्यता को व्यतरदेव तो टाल ही नहीं सकते, किंतु इंद्र और विनेद्र भा टालन में असमर्थ हैं। जिस लक्ष्मी आदि को व्यन्तर देवान्तिक नहीं दे सकते उस लक्ष्मी को मैं अपने धर्म-पुरुषार्थ द्वारा अवश्य प्राप्त कर सकता हूँ। सम्यग्दृष्टि के इन विचारों का विवेचन स्वामी कार्तिकेय की गाथा ३२०-३२१-३२२ में है —

भक्ताए पुञ्जमाणो वितरदेवो वि देदि जणि लच्छी ।  
तो कि धम्मो कोरदि, एत्त चित्तेइ सहिद्धी ॥३२०॥  
न तस्स तम्मि देसे, जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।  
णाज्जिणेण णियट्ठ जम्म वा अह्व मरण वा ॥३२१॥  
त तस्स तम्मि देसे, तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।  
को सक्कट्ठ वारेदु, इदो वा तट्ठ जिणिदो वा ॥३२२॥

व्यन्तर आदि की पूजा के निषेध को दृढ़ करने के लिये सम्यग्दृष्टि जो विचार करता है उन विचारों का कथन इन उपयुक्त तीन गाथाओं में है, जैसा कि 'एत्त चित्तेइ सहिद्धी' गाथा ३२० के इन शब्दों से स्पष्ट होता है।

सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि व्यन्तर आदि की पूजा या भक्ति करने से क्या लाभ, क्योंकि वे प्रसन्न होकर मुझको छद्मो आदि इष्ट पदार्थ नहीं दे सकते। यदि व्यन्तर आदि इष्ट या अनिष्ट कर सकते हाते तो धर्म करने का क्या आवश्यकता थी। व्यन्तर आदि न मुझको माग सकते हैं और न जोधित कर सकते हैं। जिस समय मेरा जन्म या मरण, सुख दुःख हाना होगा उसी समय होगा उसको टालने में व्यन्तरदेव तो क्या, इन्द्र या जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। यह सम्यग्दृष्टि अपने विचारों का दृढतम बनाने के लिये यह युक्ति भी देता है कि जैसा सर्वज्ञ ने जाना है वैसा ही होगा। सबज्ञान के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता।

विचारणाय यात यह है कि क्या इन गाथाओं द्वारा व्यन्तर देव की पूजा के निषेध को दृढ करने के लिये है या एकान्त नियतिवाद सिद्धांत का उपदेश इन के लिए है ?

यदि प्रकरण के अनुसार विचार किया जायगा तो यह ही कहना होगा कि इन गाथाओं का अभिप्राय मात्र व्यन्तरदेव आदि की पूजा का निषेध करना है, क्योंकि ३१८ में दोष सहित देव के मानने वाले को मिथ्यादृष्टि कहा है और गाथा ३१९ में कहा है कि व्यन्तर दृष्टि किसी जीव का उपकार या अपकार नहीं कर सकते और गाथा ३२० में भा. यन्तरादि देवों की पूजा का निषेध है।

यदि यह कहा जाय कि गाथा ३२१ व ३२२ में एकान्त नियति का उपदेश है तो उसमें अनेक दूषण आते हैं। जैसे—

१—गाथा ३११-३१२ में सत्त्वा ( द्रव्य, पर्याय ) का जा अनेकान्तरूप से भ्रद्धान है उसको सम्यग्दर्शन कहा है। इन गाथाओं

के विपरीत गाथा २१ व ३० में एका त नियति की श्रद्धा को यदि सम्यग्दर्शन कहा जायगा तो पुरोपर विरोध को दोष आ जायगा।

२—द्वादशम के दृष्टिबाध, बाधवें अङ्ग में श्री गौतमगणधर ने कहा कि जो यह मानता है 'जय, जैसे, जहाँ, जिस हेतु से, जिसके द्वारा जो जाना दे, तभी जैसे ही, वहाँ ही, इसी हेतु से, इसी के द्वारा, वह होता है, यह सब नियत है, दूसरा कोई कुछ भी नहीं कर सकता' वह नियतवाद परमत अर्थात् गृहीतमिथ्या दृष्टि है। अतः द्वादशम रूप सबलवाणा में विरोध का दूषण आ जायगा।

३—सर्वज्ञ देव ने 'अकाल मरण का कथन करते हुये यह कहा है कि अपमृत्यु का समय नियत नहीं है' जैसा 'ठिपाहल आय ग्रन्थों के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है। यदि सब जीवों के मरण का काल नियत माना जायगा तो, सर्वज्ञदेव के अकाल मरण के कथन से विरोध का दूषण आ जायेगा।

४—सर्वथा नियति मानने से, लक्ष्मी तो अपने नियत काल और नियत कारणों से मिलेगी, किन्तु गाथा ३२७ में, धर्मपुरुषाय से लक्ष्मी मिलती है ऐसा कहा गया है। इन दोनों उपदेशों में परस्पर विरोध का दूषण आ जायगा।

५—सर्वज्ञ देव ने नियतिनय-अनियतिार्थ, कालनय-अकालनय इम प्रकार परस्पर विरोधी नयों का उपदेश दिया है। 'सर्वथा नियति मानने से सर्वज्ञ देव के इम उपदेश से विरोध का दूषण आ जायगा।

६—सर्वज्ञदेव ने 'इम और अकर्म (नियति और अनियति) पर्यायों का कथन किया है और पर्यायों को इसी रूप से देखा

है। क्योंकि, जिने त्र अ यथावादी नहीं हाते । यदि पर्यायों को सर्वथा नियति (क्रमबद्ध) माना जाय तो सर्वज्ञ ज्ञान और सर्वज्ञ वाणी दोनों से विरोध का प्रसंग जा जायगा ।

७—श्री सर्वज्ञ देव ने अनेकान्त रूपी मूल सिद्धान्त का उपदेश अपना दिव्यस्वान्त द्वारा दिया है । यदि सर्वथा नियति का माना जाये तो सर्वज्ञ कथित अनेकान्त से विरोध आता है ।

८—श्री सर्वज्ञ देव ने 'सर्व प्रतिपक्ष सहित हैं' एसा उपदेश दिया है जिसका भी चारसेन स्वामी ने घबल ग्रन्थ में तथा श्री कुण्डकुन्द भगवान् ने पंचाग्निधायक म गुहित किया है । जैसे भव्य है तो इसका प्रतिपक्ष अभाव अवश्य है । यदि मुक्त पर्याय है तो उसका प्रतिपक्ष वध पर्याय ( समाप्त पर्याय ) अवश्य है, यदि शुद्ध पर्याय है तो उसका प्रतिपक्ष अशुद्ध पर्याय है । यदि नियत पर्याय है तो उसका प्रतिपक्ष अनियत पर्याय अवश्य है । यदि प्रतिपक्ष का सद्भाव नहीं तो उत्कर्ष भा सद्भाव नहीं है । सर्वथा नियति के मानन पर अनियति का अभाव हा जायगा और अनियति के अभाव से नियति का सद्भाव भी सिद्ध नहीं हा सकता । इस प्रकार सर्वथा नियति मानन पर श्री सर्वज्ञदेव कथित 'सर्व सप्रतिपक्ष' सिद्धान्त से विरोध आता है ।

९—स्वामी कार्तिकेय की गाथा ३ ३ में यह नहीं कहा गया कि सर्वज्ञदेव न च देवा है जब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी, किन्तु जब तत्र, पश्चात्, छद्म द्रव्य आदि का अध्यान कर लगा उस समय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी । सम्यग्दर्शन का उत्पत्ति के लिये कोई काल नियत है, एसा नहीं कहा ।

राजवातिक ने यदि उपदेश द्वारा नियत काल न पूर्व मोक्ष हा जाय तो अधिगमज सम्यक्त्व हा सकता है । किन्तु एसा



सम्भव नहीं। अतः आवगमन सम्बन्ध का अभाव है।' इस शका ष उत्तर में श्री सर्वज्ञ उपदेश अनुसार इस प्रकार कहा गया है—

“यतो न भव्यानां कृत्स्नकमनिनरापूर्वकमोक्षकालस्य नियमोऽस्ति । यन्ति हि भवस्य काला हेतुरिष्ट स्यात्, बाह्याभ्यन्तर-कारणनियमस्य दृष्टस्येष्टस्य वा विरोध स्यात् ।”

अर्थात् भव्या ष माक्ष के काल का नियम नहीं है। यदि सब कार्यों के लिये काल को हेतु मान लिया जावे (जब जिस कार्य का काल आवेगा तब ही वह कार्य होगा) तो प्रत्यक्ष और परोक्ष के विषयभूत कारणों से विरोध हो जायगा।

श्री स्वामी कातिकेयानुप्रेक्षा गाथा २१६ में भी कहा है कि पदार्थ में नाना प्रकार ष परिणमन करने की शक्ति है। जिस शक्ति के अनुकूल बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल आदि मिलेंगे वैसा परिणमन हो जायगा, हमको रोहन में कोई भी ममथ नहीं है। जैसे चावल में भात रूप परिणमन शक्ति है किन्तु इन्धन अग्नि पतीली जल आदि प्राप्त करके ही वह चावल भात रूप पयाय की प्राप्त होता है।

१०—ज्ञेयों के परिणमन में केवलज्ञान कारण नहीं है क्योंकि केवलज्ञान का ज्ञेयों के परिणमन के साथ अन्वय व्यतिरिक्त सम्बन्ध नहीं है। सर्वज्ञ देव ने कहा है कि जो जिसका कारण होता है उसका उसके साथ अन्वय व्यतिरिक्त अवश्य पाया जाता है।

क्योंकि अन्वय व्यतिरिक्त के द्वारा ही कार्य कारण भाव सुप्रदान होता है, अतः केवलज्ञान का ज्ञेयों के परिणमन के प्रति कारण मानना सर्वज्ञवाणा के विरुद्ध है। अतरंग और बहिरंग निमित्तों के अनुसार ज्ञया अथात् पदार्थों का परिणमन ही रहा है।

ज्ञेयों ( पदार्थों ) के परिणमन अनुसार केवलज्ञान में परिणमन होता है, ऐसा उपदेश सत्यशब्देय ने दिया है जिसको आचार्यों ने आगम में गुंथित किया है, जो म् प्रकार है—

“ज्ञेयपदार्था प्रतिक्षण भङ्गत्रयेण परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छिद्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमन्ति ।”

(प्रवचनसार पृ २१)

अर्थ—ज्ञेय पदार्थ प्रतिक्षण उत्पाद, यय, धीव्य तान रूप से परिणमन करते हैं । म्सी के अनुसार अथात् ज्ञेयों के परिणमन अनुसार ज्ञान भी जानने की अपेक्षा से उत्पाद, यय, धीव्य तानरूप परिणमन करना है ।

येन येनात्पाम् ययधो धरूपेण प्रतिक्षण ज्ञेयपदार्था परिणमन्ति तत्परिच्छिद्यत्कारेणानोन्तिवृत्त्या सिद्धज्ञानमपि परिणमन्ति ।

( वृहद् इष्य मयह गाथा १४ टीका )

अर्थ—ज्ञेय पदार्थ अपने जिस जिस उत्पाद यय धीव्य रूप से प्रति ममय परिणमत हैं उन उनके जानने रूप आकार में निरिच्छुक वृत्ति से ( बिना च्छा के ) सिद्धा का ज्ञान भी परिणमना है ।

ण च णाणविमेषमदुवारण उपज्जमाणम्म केवल्लणार्ण तम्म केवल्लणत्तं च्छिदि, पमेयप्रसेण परियत्तमाणमिद्धजीवणाण माणपि केवल्लगायत्ताभावप्पसगादा ।

( अ म प १ पृ ११ )

अथात्—यदि केवलज्ञान के अज्ञ मतिज्ञानादि ज्ञान विनाय रूप से उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनमें केवलज्ञानत्व नहीं माना जा

सकता है तो प्रमेय के वश से सिद्ध जीवों के भी ज्ञानांशों में परिवर्तन देखा जाता है। अतः उन अंशों में केवलज्ञान नहीं बनेगा।

पदार्थों के परिणमन के आधार से केवलज्ञान का परिणमन होता है इसीलिये केवलज्ञान का पदार्थों की सहायता की आवश्यकता है। इससे अतिरिक्त इन्द्रियादि की सहायता की आवश्यकता नहीं है। इसी बात को श्री १०८ वीरसेन स्वामी ने कहा है—

“आत्मार्थव्यतिरिक्तसहायनिरपेक्षत्वाद्वा केवलमसहायम्।”

(ज घ पु पृ २३)

उपर्युक्त सर्घक्षणों के विरुद्ध जो अन्यमतों की तरह केवलज्ञान के आधीन पदार्थों का परिणमन मानता है यह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता, क्योंकि सर्घक्षणों पर उसकी श्रद्धा नहीं है।



( गैस का, अणुबम आदि का ) हवाई त्वर्यटना, रेल मोटर साईकिल की दुघटना, विप भक्षण आदि कारणों से हजारों स्वयं तम्य तम्य पुरुष स्त्री मर जाते हैं ।

एसी मृत्यु को सर्वज्ञ बाणी-अनुसार आर्षग्रन्थों में अकालमरण कहा गया है । जयकि आयु के पूण क्षण भोग लने पर होने वाले मरण को बाल मरण कहा है । सोपक्रम आयु-निष्पक्रम आयु, अपवत्य आयु-क्षणपरत्य आदि वसा अकाल मरण-काल मरण व नामान्तर हैं ।

नयीं वे विभाग में कालनय तथा अकालनय भी इसी द्विविध मरण के समर्थक हैं ।

जो व्यक्ति अकालमरण को स्वीकार नहीं करते, भ्रमयज्ञ 'कालमरण' का ही एकान्त हठ करते हैं, उनको प्रमुद्ध करने के लिये माननीय सिद्धांतभूषण श्री वा० रत्नचन्द्र जो गुल्लार सहारनपुर ने प्र-त्तर रूपम यह ट्रेक्ट लिखा है, जो कि उनके प्रकाशित लेखों का सङ्ग्रह है । इसमें आने श्री कदकद, उमास्वाति, समतभद्र, विशानन्द, अमृतचन्द्र सूरि आदि अनेक प्रामाणिक प्राचान आचार्या के ग्रन्थों के प्रमाण दिये हैं ।

वे प्रमाण सर्वज्ञ बाणी के अनुसार ही हैं, अतः स्वयं की दुहाइ देने वाले धार्मिकों के इस सर्वज्ञ-बाणी में अपना श्रद्धा व्यक्त करके अनेकान्तात्मन 'काल मरण और अकाल मरण को स्वीकार करना चाहिये ।

—अजितकुमार शास्त्री

सम्पादक—चैन गण्ट

जी-भा-दि० जैन शास्त्रिपरिषद्